धूतपापेश्वर

१८७२ से आयुर्वेद सेवा

औषधि विवरण पुस्तिका

शरद ऋतु - सितंबर - अक्टूबर २०१२

०१ चतुर्मुख रस
०२ जयमंगल रस
०३ कैशोर गुग्गुल
०४ पंचतिक्त घृत गुग्गुल
०५ अर्जुनारिष्ट (पार्थाद्यरिष्ट)
०६ अशोकारिष्ट
०७ लोहासव
०८ बोलबद्ध रस
०९ चंद्रकला रस
१० गंधक रसायन
११ गर्भपाल रस
१२ सूतिकाभरण रस
१३ सुवर्णमाक्षिक भस्म
१४ ताप्यादि लोह

ऋतु वर्णन

शरद ऋतु के आगमन के साथ ही आकाश में नजर आनेवाले बरसाती बादल हट जाते हैं। वर्षा ऋतु के विपरीत, शरद ऋतु में आकाश सूरज की किरणों से जगमगा उठता है और कहीं कहीं श्वेतवर्णी बादल नजर आते हैं। भूमि सूखी और वल्मिक - बिमवट बनानेवाली चीटीयों से व्याप्त रहती है। वर्षा ऋतु की वजह से वातावरण में आयी शीतलता, शरद ऋतु के तप्त सूर्यकिरणों से कम होकर, उष्मा बढने लगता है।

इस बढी हुई उष्णता की वजह से वर्षा ऋतु में शरीर में संचित पित्त, शरद ऋतु की अत्यधिक उष्णता से प्रकुपित होता है। शरद ऋतु में वात दोष प्रशमावस्था में, पित्त दोष प्रकोपावस्था में तथा कफ दोष साम्यावस्था में होते हैं। इस ऋतु में मनुष्य की पचनशक्ति तथा शारीरिक बल मध्यम होता है।

पित्त एवं रक्त का साहचर्य होने से पित्त प्रकुपित होने पर, रक्त दुष्टी होती है। प्रकुपित पित्त एवं दुष्ट रक्त की वजह से अम्लपित्त, रक्तपित्त, रक्तप्रदर, मूत्रकृच्छ्र, मूत्रदाह तथा दाह एवं विवर्णतायुक्त त्वचा विकार जैसे विसर्प, कक्षा आदि अधिकतर नजर आते हैं।

इस ऋतु में अगस्त्य, कुरण्डक, सप्तपर्ण, विजयसार जैसे वृक्षों से पृथ्वी सुशोभित होती है। शरद ऋतु में विशेषतः हंसोदक अर्थात् वह जल जो सुबह सूरज की रोशनी से गरम हुआ हो एवं रात्री में शीतल चाँदनी में थंडा होकर अगस्ति तारे से निर्विष हुआ हो, सेवन लाभकर होता है।

चतुर्मुख रस

एस्. डी. एस्. क्र. - ०९०००६४

चतुर्मुखेन देवेन कृष्णात्रेयस्य सूचितम्।
जगतां च हितार्थाय चतुर्मुखमुखोदितः।।
रसश्चतुर्मुखो नाम चतुर्मुख इवापरः।। भै.र.

चतुर्मुख ब्रह्माजी ने जगत के हित के लिए कृष्णात्रेयजी को जिस कल्प की जानकारी दी उसे "चतुर्मुख रस" नाम से जाना जाता है। आरोग्य की दृष्टी से चतुर्मुख रस सृष्टी में दूसरे ब्रह्माजी अर्थात् जिस तरह ब्रह्मा सृष्टी के त्राता है, उसी तरह से आरोग्य का त्राता माना जाता है।

.....सर्वरोगेषु योजयेत् । भै. र.

शास्त्रवचनानुसार, 'चतुर्मुख रस' यह कल्प सर्व विकारों में उपयुक्त कल्प है। प्रत्यक्षतः भी यह कल्प धातुक्षयजन्य एवं स्रोतोरोधजन्य इन दोनो प्रकार से प्रकुपित वात के कारण होने वाले सभी विकारों में कारगर साबित होता है।

कुर्याद् ब्रह्मविनिर्मितं रसवरं यक्ष्मापहं पुष्टिदम्।
वल्लक्षौद्रफलत्रयेण सहितं मेहाग्निमांद्यप्रणुत् ।। यो. र.

राजयक्ष्मा में अत्यंत लाभदायक बल्य औषधी कल्प है चतुर्मुख रस। यह कल्प कुछ सौम्य प्रकार का एवं बल्य होने से क्षय रोग की ज्वरावस्था समय भी प्रयोग में लिया जा सकता है। इसमें उपस्थित सुवर्ण भस्म जंतुघ्न, क्षयघ्न, बल्य, रसायन एवं रक्तप्रसादक है, कज्जली जंतुघ्न, योगवाही एवं रसायन है, अभ्रक भस्म धातुपरिपोषणक्रम सुधारनेवाला तथा प्राणवह स्रोतस् एवं मस्तिष्क के लिए बल्य एवं रसायन है तथा लोह भस्म बल्य एवं रक्तवृद्धीकर है। चतुर्मुख रस को कुमारी स्वरस की भावना दी गई है, जो अग्निदीपन, कफ-क्लेद-आम पाचन एवं पित्तस्राव करने में उपयुक्त है। कुमारी स्वरस की भावना से चतुर्मुख रस स्रोतसों में उत्पन्न अवरोध दूर करता है तथा धातुओं का पोषण यथायोग्य करने में मदद करता है। यहाँ राजयक्ष्मा का अर्थ केवल ट्यूबरक्युलोसिस (Tuberculosis) न लेते हुए रसादि अथवा शुक्रादि सप्तधातुओं का क्षय होना - ऐसा लेना उचित होगा।

राजयक्ष्मा व्याधी में विकृत कफ एवं क्लेद से स्रोतोरोध उत्पन्न होता है तथा श्वासकष्टता की अनुभूति होती है। साथही पीडायुक्त कफनिष्ठीवन, मंद अथवा तीव्र ज्वर, अग्निमांद्य, दौर्बल्य आदि लक्षण नजर आते हैं। ऐसी अवस्था में चतुर्मुख रस को सितोपलादि चूर्ण एवं शहद के साथ देने से लाभ प्राप्त होता है। सुवर्ण भस्म व्याधि क्षमता को बढाता है तथा अभ्रक भस्म धातुओं की दुर्बलता शीघ्र ही दूर करता है, जिससे क्षय की अवस्था दूर होने में लाभ मिलता है।

चतुर्मुख रस का विशेष प्रभाव आमाशय एवं ग्रहणी, इन अवयवों पर नजर आता है। आमाशय एवं ग्रहणी में उत्पन्न शैथिल्य के कारण अग्निमांद्य, अन्न का पचन ठीक तरह से न होना, निकृष्ट आहाररस की निर्मिती तथा रस धातु से उत्तरोत्तर धातुओं के क्षयावस्था ऐसी क्रमिक अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं। साथ ही यकृतस्थ पाचक पित्त का स्राव योग्य तरह से नहीं होता। चतुर्मुख रस में उपस्थित घटक द्रव्य एवं कुमारी स्वरस की भावना से पाचक पित्त का स्राव नियोजित होता है तथा अन्न का शोषण एवं उत्तम रस धातु की निर्मिती सुचारू रूप से होकर उत्तरोत्तर धातुओं का पोषण योग्य पद्धती से होता है।

पाण्डु व्याधी में यकृत् एवं प्लीहा यह रक्तवह स्रोतस् के मूल स्थान दुष्ट होने से रक्त धातु में क्षीणता अथवा रक्त में रक्तकणों की कमी नजर आती है। **रक्तेऽम्लशिशिरप्रीति सिराशैथिल्य रुक्षता** आदि लक्षणों से यह आसानी से जाना जा सकता है। चतुर्मुख रस में उपस्थित अभ्रक भस्म, लोह भस्म एवं कुमारी स्वरस की भावना से यकृत् तथा प्लीहा की दुष्टी दूर होकर रक्तकणों की वृद्धी होती है। साथही सुवर्ण भस्म रसायन एवं रक्तप्रसादक होने से पाण्डु व्याधी में उत्कृष्ट रस एवं रक्त धातु की निर्मिती होती है।

उत्तम धातुक्षयनाशक एवं स्रोतोरोधनाशक होने से चतुर्मुख रस मस्तिष्क संबंधित विकार जैसे उन्माद, आक्षेपक एवं वातप्रकोपजन्य मूर्च्छा में उपयुक्त कल्प है। सुवर्ण भस्म, अभ्रक भस्म एवं लोह भस्म इन घटक द्रव्यों की वजह से मस्तिष्क एवं वातवहनाडीसंस्थान पर यह कल्प उत्तम शामक एवं बल्य साबित होता है। इस अवस्था में सारस्वतारिष्ट के साथ चतुर्मुख रस का प्रयोग करने से अधिक लाभ मिलता है।

वातव्याधी की सामावस्था, आमवात, साम संधिगत वात में स्रोतोरोध अथवा मार्गावरोध नाशनार्थ तथा इन समस्त व्याधियों की जीर्णावस्था में धातुक्षय नाशनार्थ, चतुर्मुख रस अत्यंत प्रभावशाली कल्प है। महारास्नादि काढा अथवा दशमूलारिष्ट के साथ चतुर्मुख रस का प्रयोग करने से उत्तम लाभ मिलता है।

जयमंगल रस

एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र. - ०९०००७४

निखिलं ज्वरनामानं हन्ति श्रीशिवनिर्मितः।
जयमङ्गलनामाऽयं रसः बलपुष्टिकरश्चैव सर्वरोगनिबर्हणः।।भै.र.

ऐसी मान्यता है, कि श्रीशिवजींने सर्वप्रथम इस औषधी कल्प को बनाया था। यह कल्प सर्व प्रकार के ज्वर का नाश करता है तथा सप्तधातुओं का पोषण करने से सर्वरोगनाशक है।

विशेषतः 'जयमंगल रस' का प्रयोग जीर्ण ज्वर, धातुगत ज्वर तथा विषमज्वर में स्रोतोरोध नाशनार्थ तथा वातशमनार्थ किया जाता है। इसके सेवन से सूक्ष्म स्रोतसों में संचित दोष नष्ट होकर रस से शुक्र धातु तक धातुपरिपोषणक्रम सुधरता है। धातुगत ज्वरों में विशेषतः मांसगत, मेदोगत, अस्थिगत एवं मज्जागत ज्वरों में जयमंगल रस प्रभावशाली औषधी कल्प है। ऐसी स्थिती में जयमंगल रस का प्रयोग संशमनी वटी, अमृतारिष्ट के साथ करने से अधिक लाभ प्राप्त होता है।

जयमंगल रस में उपस्थित सुवर्ण भस्म हृद्य, रक्तप्रसादन, बल्य एवं ओजोवर्धन है, रजत भस्म मज्जावर्धक एवं वातवहनाडीसंस्थान पर शामक प्रभावयुक्त है, कान्तलोह भस्म उत्तम रक्तवर्धक, बल्य एवं रसायन है, ताम्र भस्म यकृतोत्तेजक, विषनाशक एवं बल्य है, वंग भस्म शुक्रधातुवर्धक, रसायन एवं बल्य है, सुवर्णमाक्षिक भस्म पित्तशामक, रक्तप्रसादक, बल्य एवं हृद्य है, कज्जली योगवाही एवं रसायन है, मरिच अग्निदीपन, वातकफघ्न, आमपाचक एवं प्रमाथी है। जयमंगल रस में धत्तूर पत्र स्वरस ज्वरघ्न, कृमिघ्न एवं अग्निदीपन है, पारिजातकपत्र क्वाथ पित्तनाशक एवं विशेष रुप से विषमज्वर / शीतपूर्वक ज्वर पर कार्यकारी है, दशमूल क्वाथ वातनाशक है तथा किरातितिक्त क्वाथ दाहशामक, कृमिघ्न, ज्वरघ्न एवं सारक है।

विषमज्वर में यकृत्प्लीहा वृद्धी, दौर्बल्य तथा अग्निमांद्य होनेपर जयमंगल रस का प्रयोग करना इष्ट है। अपने ज्वरघ्न, विषघ्न एवं रक्तवर्धक कार्य से विषमज्वर में लाभ प्राप्त होता है। विषमज्वर अथवा जीर्ण ज्वर से उत्पन्न उपद्रवों में भी जयमंगल रस धातुपरिपोषणक्रम सुधारकर धातुक्षय होने से रोकता है एवं सप्तधातुओं का बल बढाता है।

सुवर्ण के साथ कान्तलोह एवं सुवर्णमाक्षिक की उपस्थिती से रक्तप्रसादक होने से जयमंगल रस हृदय, मस्तिष्क एवं फुप्फुस, इन अवयवों पर शामक कार्य करता है। साथही ताम्र भस्म एवं किरातितिक्त की उपस्थिती से यकृतस्थ साम पित्त का पाचन होकर दोषविरहित रक्तधातु वृद्धि में मदद मिलती है, जिससे जीर्ण पाण्डु रोग का नाश होने में मदद मिलती है। इसके सेवन से हृदय के मांसपेशियों को बल प्राप्त होकर हृदय की रसरक्तविक्षेपन क्रिया सुधरती है तथा शरीर के समस्त अवयवों को योग्य मात्रा में रक्त की आपूर्ति होती है।

दीर्घकालीन व्याधि पश्चात् अथवा ज्वर पश्चात् उत्पन्न धातुक्षय की अवस्था, में जयमंगल रस उत्तम लाभदायी होता है। धातुक्षय की अवस्था दूर कर बल प्रदान करने का कार्य जयमंगल रस से होता है।

जयमंगल रस में उपस्थित सभी घटक द्रव्यों के गुणधर्म से, यह कल्प नव तथा जीर्ण व्याधी, साम तथा निराम अवस्था एवं मार्गावरोध तथा धातुक्षय की समस्त अवस्थाओं में विभिन्न विकारों में उपयुक्त सुवर्णकल्प है।

राजयक्ष्मा व्याधि में अवरोधात्मक संप्राप्ति रहते, जयमंगल रस उपयुक्त साबित होता है। इस कफवातघ्न कल्प में मरिच जैसे प्रमाथी द्रव्य होने के कारण सूक्ष्म स्रोतसों में भी अवरोध दूर होकर धातुपोषण योग्य रुप से होकर धातुक्षय की अवस्था दूर होती है।

कैशोर गुग्गुल

एस्. डी. एस्. क्र. - ०४०००१४

'अमृता' अर्थात् गुडूची इस प्रधान द्रव्य एवं अमृता विशेष शोधित गुग्गुल से बना 'कैशोर गुग्गुल' वातरक्त इस व्याधी का सबसे महत्वपूर्ण गुग्गुल कल्प है।

'अमृता.....श्लेष्मशोणितविबंध प्रशमनानां श्रेष्ठः।'
चरक सूत्रस्थान

अमृता रक्तगत दोषपाचन एवं वातहर कार्य में श्रेष्ठ द्रव्य है। वातरक्त व्याधी में स्वतंत्र कारणों से दुष्ट रक्त तथा मार्गावरोध से प्रकुपित वात यह मुख्य संप्राप्ति घटक होते हैं। इस व्याधी में शरीर के छोटे संधि पीडित होते हैं। इससे पर्वसंधि शूल, छोटे संधियों की जगह पर सुप्ति, त्वक् वैवर्ण्य, स्थानिक शोथ एवं तीव्र वेदना की अनुभूति होती है। कभी कभी शूल इतना होता है, कि स्पर्शासहत्व उत्पन्न होता है। ऐसी अवस्था में यदि शोथ अधिक हो अथवा आघात की वजह से व्रण उत्पन्न हो जाए, तो कैशोर गुग्गुल सभी कल्पों में श्रेष्ठ कल्प है। वातरक्त व्याधि में पर्वसंधियों में संचित दोषों का अवरोध दूर कर रक्तसंवहन में सुधार लाने का कार्य कैशोर गुग्गुल से होता है। गुडूची..... आदि घटक रक्तदुष्टि दूर करने का कार्य करते हैं, तो गुग्गुल जो वातहर द्रव्यों में श्रेष्ठ है, वातप्रकोप कम करने का कार्य करता है। इससे वातरक्त में उत्पन्न शोथ कम होने के साथ शूल भी कम होता है। वातरक्त में रक्तप्रसादनार्थ, शोथहर एवं वेदनाशामक कार्य से कैशोर गुग्गुल प्रभावी साबित होता है। अमृतारिष्ट के साथ कैशोर गुग्गुल देने से अधिक लाभ मिलता है। पर्वसंधि शूल अत्यधिक होने पर कैशोर गुग्गुल के साथ वातविध्वंस रस एवं महारास्नादि काढा की योजना लाभप्रद होती है।

पित्त एवं वात दोष से दुष्ट त्वचा विकारों में कैशोर गुग्गुल लाभ देता है। इसके सेवन से रक्ताश्रित पित्त दोष के बढे हुए उष्ण - तीक्ष्ण गुणों का शमन होता है तथा रक्तप्रसादन होकर दुष्ट रक्त से उत्पन्न दाह, आरक्तवर्णता, कण्डू, शोथ आदि लक्षण कम हो जाते है।

पाण्डु व्याधी की निर्मिती के लिए यदि पित्त प्रकोपक आहार विहारादि हेतु हो, तो कैशोर गुग्गुल उपयुक्त साबित होता है। पित्तशमन एवं रक्तप्रसादन गुणधर्म युक्त अमृता की उपस्थिती से कैशोर गुग्गुल यकृत् एवं प्लीहा के कार्य में सुधार लाता है।

केशभूमी में उत्पन्न स्रावयुक्त पीडका अर्थात् अरुंषिका में भी कैशोर गुग्गुल अत्यंत असरदार कल्प है। इसमें उपस्थित विडंग कृमीघ्न कार्य करता है, त्रिफला एवं त्रिवृत पित्त का अनुलोमन करते हैं, अमृता रस एवं रक्त धातु का प्रसादन करती है। अरुंषिका विकार में कैशोर गुग्गुल एवं महामंजिष्ठादि काढा का एकत्रित प्रयोग लाभ देता है।

व्रणों की चिकित्सा में कैशोर गुग्गुल अत्यंत प्रभावी कल्प है, विशेषतः विकृत पित्त एवं कफ से उत्पन्न स्रावी व्रणों में रक्तप्रसादनार्थ एवं विकृत पित्त - कफ शमनार्थ, यह कल्प लाभदायक होता है। व्रणों की चिकित्सा में यशद भस्म एवं कैशोर गुग्गुल का एकत्रित प्रयोग असरदार साबित होता है। साथही व्रणों का धावन त्रिफला क्वाथ अथवा पंचवल्कल क्वाथ के साथ करने से लाभ मिलता है।

पंचतिक्त घृत गुग्गुल

एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र. - ०४००१०४

निंब, गुडूची, वासा, पटोल, कंटकारी इन पाँच तिक्तरसात्मक द्रव्यों से निर्मित तथा घृत की उपस्थिती होनेवाला गुग्गुल कल्प है - 'पंचतिक्त घृत गुग्गुल'।

पंचतिक्त घृत गुग्गुल, यह कुष्ठ अर्थात् त्वचा विकारों में अनेक वैद्यों का पसंदीदा गुग्गुलकल्प है। विशेषतः एककुष्ठ, विचर्चिका, विपादिका आदि शुष्क त्वक् विकारों में यह अधिक लाभदायक है। तिक्त रस प्रधान कल्पों में इस कल्प की गिनती की जाती है। पंचतिक्त, त्रिफला, हरिद्रा, कुष्ठ आदि द्रव्य उत्तम रक्तप्रसादक, त्वग्दोषहर एवं कण्डूघ्न है, विडंग उत्कृष्ट कृमिघ्न है, वचा, शुण्ठी, शतपुष्पा, जीरक, चित्रक, मरिच उत्तम अग्निदीपक, आमपाचक, विकृत कफ एवं क्लेद का नाश करनेवाला है, कुटकी उत्कृष्ट भेदन द्रव्य है। इस कल्प में त्रिफला विशेष शोधित गुग्गुल होने से यह कल्प विकृत कफ - मेद का लेखन कर स्रोतोशोधन करने में कारगर है। पंचतिक्त घृत गुग्गुल में उपस्थित गोघृत से शुष्क हुए

त्वक्, मांस आदि घटकों का स्नेहन एवं पोषण होता है। शुष्क त्वक् विकारों में इस कल्प के प्रयोग से प्रभावित क्षेत्र का रक्तसंवहन सुधरता है तथा कृमि, क्लेद आदि का नाश होता है। पंचतिक्त घृत गुग्गुल के साथ महामंजिष्ठादि काढा अथवा अमृतारिष्ट का प्रयोग, शुष्क त्वक् विकारों में अत्यंत उपयुक्त साबित होता है। एककुष्ठ व्याधि की चिकित्सा में अत्यंत महत्वपूर्ण योग है पंचतिक्त घृत गुग्गुल। एककुष्ठ व्याधि जो वातकफप्रधान है, पित्तसंसृष्टत्व होते हुए भी इस कल्प से उत्तम लाभ मिलता है। पंचतिक्त घृत गुग्गुल में उपस्थित तिक्त कषाय रसात्मक द्रव्य जैसे निम्ब, पटोल, वासा, गुडूची - आदि वात कफजन्य दुष्टि दूर करने का कार्य करते हैं। इन द्रव्यों के साथ ही घृत की उपस्थिती से स्नेहन के साथ पित्तशमन का कार्य भी होता है। एककुष्ठ की जीर्णावस्था में भी अधिक दिन तक इस कल्प का प्रयोग कर सकते है। आधुनिक चिकित्सा से न मिलनेवाला लाभ पंचतिक्त घृत गुग्गुल के प्रयोग से अवश्य मिलता है। त्वचा से निकलने वाले परत कम होने के साथ कण्डू अथवा दाह कम होने में मदद मिलती है।

एककुष्ठ व्याधी की जीर्णावस्था में कई बार संधिविकार की उत्पत्ति होती है। ऐसे संधिविकार की चिकित्सा में पंचतिक्त घृत गुग्गुल का प्रयोग गुणकारी साबित होता है। इससे ना सिर्फ अस्थिमज्जागत वातप्रकोप कम होता है, बल्कि रक्तदुष्टी भी दूर होकर जल्द लाभ मिलता है। ऐसे स्थिती में पंचतिक्त घृत गुग्गुल एवं अमृतारिष्ट का एकत्रित प्रयोग फलदायी होता है।

दारुणक (Dandruff) जैसे शुष्क केशभूमी विकारों में कण्डू, दाह, केशपतन आदि लक्षण रहते पंचतिक्त घृत गुग्गुल एवं गंधक रसायन का अभ्यंतर प्रयोग लाभदायक होता है। साथही प्रतिदिन तैलाभ्यंग तथा नीम स्वरस अथवा नीम क्वाथ से केशभूमी का धावन लाभ देता है। पंचतिक्त घृत गुग्गुल से रुक्षता एवं रक्तदुष्टी नष्ट होती है और साथही बालों की जडों को योग्य मात्रा में रक्तसंवहन होता है।

अस्थि - मज्जागत वातप्रकोप अथवा अस्थिसौषिर्य से उत्पन्न संधिविकारों में पंचतिक्त घृत गुग्गुल असरदार है। इसमें उपस्थित वचा, शुण्ठी, कुटकी, शतपुष्पा, जीरक, मरिच आदि घटक द्रव्यों से तथा त्रिफला विशेष शोधित गुग्गुल से स्रोतोरोध दूर होकर तथा आमपाचन होकर वातशमन होता है। पंचतिक्त घृत गुग्गुल के साथ दशमूलारिष्ट का प्रयोग करने से अस्थिसौषिर्य से उत्पन्न शूल, संधिगतवात, कटिशूल आदि से राहत मिलती है।

पंचतिक्त घृत गुग्गुल, यह उत्तम अग्निदीपन, पाचन, विकृत कफ - क्लेदघ्न तथा रक्तदुष्टीहर गुग्गुल कल्प होने से, यह कल्प प्रमेहजन्य त्वचाविकारों में अत्यंत उपयुक्त है। प्रमेह के उपद्रव स्वरुप उत्पन्न व्रण अथवा कोथ जैसी अवस्थाओं में पंचतिक्त घृत गुग्गुल के साथ यशद भस्म एवं ताप्यादि लोह का प्रयोग करने से व्रणरोपण होता है।

त्रिफला विशेष शोधित गुग्गुल की उपस्थिती से यह कल्प भगंदर, अर्श, नाडीव्रण आदि गुदगत विकारों में शूलप्रशमनार्थ, कृमिनाशनार्थ, दाहशमनार्थ तथा व्रणरोपणार्थ प्रभावशाली साबित होता है। इन अवस्थाओं में पंचतिक्त घृत गुग्गुल तथा अभयारिष्ट का एकत्रित प्रयोग लाभ देता है।

अर्जुनारिष्ट (पार्थाद्यरिष्ट)

एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र.- १००००१

'अर्जुन' इस उत्तम हृद्य द्रव्य से बना अर्जुनारिष्ट हृदय एवं फुफ्फुस संबंधित विकारों / लक्षणों में श्रेष्ठ अरिष्ट कल्प है।

हृत्फुफ्फुसगदान् सर्वान् हन्त्ययं बलवीर्यकृत् । भै.र. (हृद्रोग)

अर्जुन अर्थात् पार्थ इस वनस्पति द्रव्य की त्वचा से बने इस अरिष्ट का प्रमुख कर्म हृदय तथा संबंधित रक्तवाहिनीयों को बल देना है, जिससे हृदय की कार्यशक्ति बढती है। इसी तरह फुफ्फुसों की कार्यक्षमता बढाकर प्राणवह स्रोतस् के विकारों में भी यह अरिष्ट उपयोगी है।

जीर्ण हृदय विकारों में अधिकतर हृदय आयाम (Hypertrophy) से ग्रस्त रुग्ण वैद्यों के पास आते हैं। ऐसी अवस्था में हृदय की दुर्बलता को दूर करने के लिए अर्जुनारिष्ट जैसे 'हृद्बल्य' अरिष्ट कल्प का प्रयोग लाभ देता है। अर्जुनारिष्ट से हृदय की मांसपेशियों का शैथिल्य दूर होकर हृदय की आकुंचन प्रसारण क्षमता बढती है। अर्जुन, यह कषाय रसात्मक द्रव्य होने से क्लेद शोषण में लाभ देता है, जिससे रस - रक्त विक्षेषण सुधरता है तथा रक्तचाप नियंत्रित करने में भी सहायता मिलती है। हृदय आयाम, हृत्शूल तथा संबंधित उच्च रक्तचाप में 'अर्जुनारिष्ट' के साथ 'बृहत् वात चिंतामणि रस' का प्रयोग लाभ देता है।

हृदय विकार का एक और प्रमुख लक्षण 'आयासेन श्वास' (Dyspnoea on exertion) है, अर्थात् रुग्ण को थोडा कष्ट करने पर, चलने पर विशेषतः सीढियाँ चढने पर श्वासकष्टता की अनुभूति होती है। इसके दो कारण हो सकते हैं। हृदय की मांसपेशियों में उत्पन्न शैथिल्य / दौर्बल्य तथा फुफ्फुस की कार्यक्षमता में उत्पन्न विकृती। हृदय की मांसपेशियों को रक्त की आपूर्ति करने वाली धमनियों में अवरोध उत्पन्न होने से श्वासकष्टता के साथ हृदय प्रदेश में शूल यह लक्षण भी दिखाई देता है। इन विकारों में अर्जुनारिष्ट अत्यंत उपयुक्त साबित होता है। हृदय की मांसपेशियों में उत्पन्न दुर्बलता के कारण शरीरस्थ एवं फुफ्फुस के रक्तसंवहन में बाधा के कारण श्वासकष्टता यह लक्षण उत्पन्न होता है। कई बार हृदय कपाटिकाओं की विकृती के कारण एवं उच्चरक्तचाप के उपद्रवस्वरुप हृदय के वाम निलय की मांसपेशियों में शैथिल्य एवं आकारमान में वृद्धि पायी जाती है। हृदय की मांसपेशियों में उत्पन्न शैथिल्य दूर कर आकुंचन क्षमता बढाने का कार्य अर्जुनारिष्ट से होता है, जिससे आयासेन श्वासकष्टता इस लक्षण में उपशय मिलता है। अर्जुनारिष्ट के साथ बृहत् वात चिंतामणि रस, महालक्ष्मीविलास रस, हीरक भस्म, अभ्रक भस्म, अकीक पिष्टी आदि औषधिकल्पों का प्रयोग इन अवस्थाओं में अत्यंत लाभकर साबित होता है।

अर्जुनारिष्ट का प्रयोग वातप्रधान हृद्रोग में करते समय रुग्णों के लक्षणों के बदलावों को सूक्ष्मता से जाच लेना आवश्यक होता है। अर्जुन यह अत्यंत कषाय रसात्मक द्रव्य होने के कारण रक्तवाहिनीयों का संकोच करता है। जिन रुग्णों में रक्तवाहिनीयों में अवरोध की स्थिती हो, ऐसे रुग्णों में रक्तवाहिनीयों के संकोच से हृद्शूलादि लक्षण बढ सकते हैं। दशमूलारिष्ट, बृहत् वात चिंतामणि रस जैसे वातशामक अरिष्ट का प्रयोग अर्जुनारिष्ट के साथ करने से हृद्शूलादि लक्षणों में राहत मिलती है।

कफ पित्त एवं मेद विकृतिजन्य हृद्रोग में अर्जुनारिष्ट अत्यंत गुणकारी होता है।

स्थौल्य विकार में अपाचित एवं अतिमात्रा में संचित मेद धातु अन्य अवयवों में संचित होने के साथ, रक्तवाहिनीयों में भी संचित होता है। अर्जुनारिष्ट में अर्जुन इस कषाय रसप्रधान एवं मेदोघ्न गुणधर्म के द्रव्य की उपस्थिती से रक्तवाहिनीयों में संचित अपाचित मेद कम होने में होता है।

अर्जुनारिष्ट में अर्जुन के साथ कृष्ण मृद्विका यह द्रव्य भी होता है। मृद्विका यह स्निग्ध एवं मृदु विरेचक होने के साथ पित्तदुष्टी दूर करने में तथा बल्य एवं वृष्य कार्य करती है। इसीलिए अर्जुनारिष्ट पित्तदुष्टीजन्य हृदय विकारों तथा फुफ्फुस संबंधि विकारों में भी गुणकारी साबित होता है।

अर्जुन के कषाय रस एवं स्तंभक गुणधर्म से युक्त अर्जुनारिष्ट उत्तम रक्तस्तंभन कार्य करता है। विशेषतः अधोग रक्तपित्त के प्रकार जैसे रक्तार्श, रक्तातिसार एवं अत्यार्तव में रक्तस्तंभनार्थ, अर्जुनारिष्ट का प्रयोग 'रक्तस्तंभक टेबलेट्स' के साथ करने से लाभ प्राप्त होता है।

अशोकारिष्ट

एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र. - १००००२

'अशोक' इस कषाय रसप्रधान एवं स्तंभक गुणधर्म के द्रव्य से बना 'अशोकारिष्ट', स्त्रीरोगों में अत्यंत लाभकर कल्प है।

स्त्रियों के गर्भाशय एवं मासिक धर्म संबंधित विविध विकारों में विशेष रुप से उपयुक्त होने से, अशोकारिष्ट ''स्त्री मित्र'' नाम से जाना जाता है।

... . पीत्वैनमसृदग्दररुजां जयेत्।
ज्वरञ्च रक्तपित्तार्शोमन्दाग्नित्वमरोचकम्।।
मेहशोथादिकहरस्त्वशोकारिष्टसंज्ञितः ।। भै. र. (प्रदर)

अशोकारिष्ट रक्तप्रदर, ज्वर, रक्तपित्त, रक्तार्श, मंदाग्नि, अरोचक, प्रमेह, शोथादि रोगों को नष्ट करता है। अशोकारिष्ट गर्भाशय पर उत्तम बल्य कार्य करता है। अशोकारिष्ट में उपस्थित 'अशोक' अपने कषाय रस प्रधानता एवं रक्तस्तंभन कार्य से अत्यधिक मासिक स्राव अर्थात् रक्तप्रदर अथवा अत्यार्तव में अत्यंत प्रभावशाली अरिष्ट कल्प साबित होता है। रक्तप्रदर की चिकित्सा में वैद्यों का सबसे पसंदीदा एवं गुणकारी कल्प है अशोकारिष्ट। अशोकारिष्ट के प्रयोग से गर्भाशय के मांसपेशियों का योग्य पद्धती से आकुंचन - प्रसारण होकर रक्तस्राव नियंत्रित किया जाता है। अत्यार्तव की चिकित्सा में अशोकारिष्ट के साथ 'बोलबद्ध रस' अथवा 'पुष्यानुग चूर्ण' का एकत्रित प्रयोग लाभदायक होता है।

कई स्त्रियों को रजोनिवृत्ति के समय अत्यधिक मासिकस्राव होता है। रक्तप्रदर अथवा अत्यार्तव की चिकित्सा करने पर भी अपेक्षित लाभ नहीं मिलता। सोनोग्राफी करने पर गर्भाशय शैथिल्य (Bulky Uterus) अथवा मांसार्बुद (Polyp/Fibroid) नजर आते हैं। ऐसी अवस्था में अशोकारिष्ट रक्तस्तंभनार्थ एवं गर्भाशय के मांसपेशियों एवं रक्तवाहिनीयों का शोथ कम करने में असरदार साबित होता है। गर्भाशयस्थित मांसार्बुद में अशोकारिष्ट एवं 'कांचनार गुग्गुल' का एकत्रित प्रयोग लाभ देता है।

मासिक स्राव संबंधित विकार जैसे कष्टार्तव, अल्पार्तव, अनियमित मासिक स्राव, दुर्गंधित एवं ग्रथित मासिक स्राव, मासिक स्राव संबंधित कटिशूल आदि में अशोकारिष्ट उपयुक्त अरिष्ट कल्प है। मासिक स्राव संबंधित गर्भाशय, बीजवाहिनी एवं बीजकोष के क्रियात्मक विकृती में अशोकारिष्ट का प्रयोग लाभ देता है। साथही 'चंद्रप्रभा', 'पुष्पधन्वा रस', 'शंखवटी' जैसे कल्प भी उपयुक्त होते हैं।

रक्तप्रदर के साथही श्वेतप्रदर में भी अशोकारिष्ट उपयुक्त होता है। श्वेतप्रदर में श्वेत स्राव, कण्डु, योनीदाह, कटिशूल, उदरशूल आदि लक्षणों में अशोक के कषाय रस से क्लेद, विकृत कफ का नाश होता है एवं स्राव का स्तंभन होता है। श्वेतप्रदर की चिकित्सा में अशोकारिष्ट एवं 'पुष्यानुग चूर्ण' का एकत्रित प्रयोग लाभकर साबित होता है। कई बार श्वेतप्रदर योनिमार्ग में उत्पन्न व्रण के परिणाम स्वरूप दिखाई देता है। इस अवस्था में व्रणरोपक कार्य से अशोकारिष्ट उपयुक्त होता है।

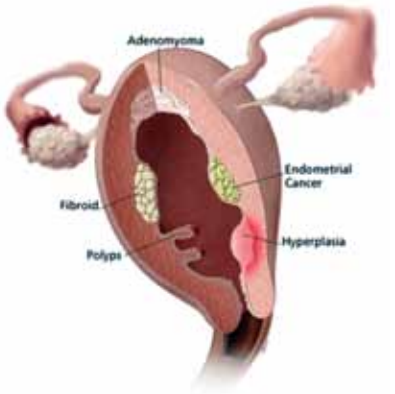

गर्भाशय में उत्पन्न व्रण में भी अशोकारिष्ट लाभ देता है। इसके कषाय रस से व्रण का रोपण होकर रक्तस्तंभन में भी लाभ प्राप्त होता है।

अधोग रक्तपित्त में विशेषतः रक्तार्श में अशोकारिष्ट का प्रयोग व्रण रोपणार्थ तथा रक्तस्तंभनार्थ किया जाता है। रक्तार्श की चिकित्सा में अशोकारिष्ट के साथ 'रक्तस्तंभक टेबलेट्स' का प्रयोग असरदार साबित होता है।

गर्भाशय अपानवायु के क्षेत्र में रहने वाला एवं उसके नियंत्रण में ही अपना कार्य करने वाला अवयव है। आज जिसे Dysfunctional uterine bleeding से जाना जाता है, ऐसी अवस्था में समीरपन्नग का प्रयोग अशोकारिष्ट के साथ करने से उत्तम लाभ मिलता है। समीरपन्नग जो तलस्थ कुपिपक्व रसायन है, शरीर के अधोभाग में कार्य करने के साथ उत्तम वातशामक है।

आजकल स्त्रियों में अत्यार्तव की शिकायत के मुख्य कारण दिखाई देते है स्थूलता, गर्भाशय शैथिल्य, मांसार्बुद एवं पित्तप्रधान दोष दुष्टि। कुछ स्त्रियों में हार्मोन में हुए बिगाड के कारण भी अत्यधिक मासिक स्राव दिखाई देता है।

अशोकारिष्ट जो कषाय रसप्रधान होने से तथा आकाश एवं वायु महाभूत प्रधान होने से मेदसंचिती एवं गर्भाशय शैथिल्य में बढे हुए पार्थिव एवं जल महाभूत प्रधान घटकों को कम कर मांसपेशियों में दृढता लाने का कार्य करते हैं। इससे मांसपेशियों में उत्पन्न शैथिल्य दूर होकर योनिगत रक्तस्राव में नियंत्रण आता है। मेदसंचिती कम करने के लिए कांचनार गुग्गुल, चंद्रप्रभा जैसे कल्पों का प्रयोग साथ में लाभकर होता है।

अशोक इस द्रव्य पर आज आधुनिक पद्धति से अनुसंधान हुआ है,

जिससे यह Hormonal imbalance की वजह से उत्पन्न होने वाले मासिक धर्म संबंधित विकार जैसे अनियमित मासिकस्राव, कष्टार्तव आदि विकारों पर उत्तम कारगर साबित हुआ है।

अशोकारिष्ट का उपयोग कुमारिकाओं में एवं विवाहित स्त्रियों में PCOD नामक विकारों में भी होता है। सूतिकाभरण रस, पुष्पधन्वा रस जैसे कल्पों के साथ अनुपान रुप में अशोकारिष्ट उत्तम लाभ देता है।

लोहासव

एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र. - १०००१६

'लोहभस्म' जैसे श्रेष्ठ रक्तवर्धक भस्म एवं त्रिफला, त्रिकटु, त्रिमद, अजमोदा जैसे दीपक द्रव्यों से निर्मित 'लोहासव', पाण्डु व्याधी में अत्यंत असरदार आसव कल्प है।

'लोहं दीपनमुत्तमं.....' - रसतरंगिणी

लोह भस्म, यह पाण्डुरोग में प्रयुक्त अत्यंत उपयुक्त औषधी है। यह भस्म उत्तम अग्निदीपक, रक्तवर्धक एवं बल्य है। लोह भस्म तिक्त कषाय रसात्मक, मधुर विपाकी, शीत वीर्यात्मक, रुक्ष, कफपित्तप्रकोप नाशक, नेत्र्य, त्वक्रोगहर एवं मेध्य है।

लोहासवममुं मर्त्यः पिबेद् वह्निकरं परम्।
पाण्डुश्वयथुगुल्मानि जठराण्यर्शसां रुजम् । शा.सं.म.खं.- पाण्डु

पाण्डु व्याधी में लोह भस्म के साथ अलग अलग द्रव्यों को एकत्रित कर विभिन्न कल्प बनाए जाते हैं। किन्तु पाण्डु व्याधी में जब अग्निमांद्य अधिक हो, तो लोहासव यह औषधि वैद्यों का पसंदीदा औषधी कल्प होता है। लोहासव का प्रभाव रक्तवहस्रोतस् के मूल स्थान अर्थात् यकृत् एवं प्लीहा पर होता है, जिससे इनके कार्य में सुधार नजर आता है। यकृतस्थ पाचक पित्त कोष्ठ में सुलभता से आता है तथा

उसकी दुष्टी नष्ट होने से अन्नपचन का कार्य सुधरता है एवं उत्तम आहार रस की निर्मिती होती है। लोहासव के रक्तवर्धक गुणधर्म तथा अग्निवर्धक गुणधर्म से रस - रक्तादि धात्वग्निमांद्य दूर होकर उत्तम रस तथा रक्त धातु की निर्मिती होती है। रस रक्तादि धातु बलवान होते हैं तथा रक्तधातु में उपस्थित रक्तकणों की संख्या में वृद्धी होने में मदद मिलती है। साथही विकृत कफ, पित्त अथवा आम की दुष्टी भी दूर होती है।

पाण्डु व्याधी में उत्पन्न शोथ तथा पाण्डु व्याधी व्यतिरिक्त उत्पन्न शोथ में भी लोहासव प्रभावशाली कल्प है। लोहासव में उपस्थित लोह भस्म, त्रिकटु, त्रिफला, त्रिजात यह रुक्ष द्रव्य होने से तथा अग्निवर्धक होने से शरीर में उत्पन्न अतिरिक्त क्लेद का नाश करते हैं जिससे शोथ नष्ट होने में सहायता होती है। ऐसी अवस्था में लोहासव के साथ 'पुनर्नवा मण्डूर' का भी प्रयोग कर सकते है।

यकृत् एवं प्लीहा की तरफ गामित्व होने से, लोहासव यह विषमज्वर एवं जीर्ण ज्वर के प्रभाव से उत्पन्न यकृत् प्लीहा वृद्धी में अत्यंत उपयुक्त कल्प है। इससे यकृत् स्थित पाचक पित्त का योग्य पद्धति से उदीरण होता है तथा यकृत् एवं प्लीहा का शोथ नष्ट होने में सहायता मिलती है। ऐसी स्थिती में लोहासव के साथ 'आरोग्यवर्धनी' का प्रयोग लाभदायक होता है।

अग्निमांद्य से उत्पन्न व्याधीयों में उदर व्याधी की गणना की जाती है। उदर व्याधी में अग्नि स्थान अर्थात् यकृत् प्लीहा में विकृती पाई जाती है, जिससे पाचक पित्त कोष्ठ में भलीभाँति नहीं आ पाता। इससे अन्न का पचन ठीक तरह से ना होकर, अत्यधिक क्लेद की निर्मिती होती है एवं उदर प्रदेश का आकार बढता है। लोहासव उदर व्याधी में विशेष लाभदायक कल्प है। लोह भस्म के अग्निवर्धन गुणधर्म एवं शोथघ्न गुणधर्म से युक्त लोहासव उदर व्याधी में अत्यंत असरदार साबित होता है। 'आरोग्यवर्धनी' के साथ लोहासव का प्रयोग उदर व्याधी में लाभ देता है।

अल्पार्तव, नष्टार्तव जैसे मासिक स्राव संबंधित विकारों में भी लोहासव उपयुक्त है। आर्तव यह रस धातु का उपधातु होने से, रस धातु के क्षय से आर्तव का भी क्षय होता है, जिसके फलस्वरुप अल्पार्तव अथवा नष्टार्तव होता है। लोहासव जननेंद्रियों के लिए उत्तम बल्य कल्प है। लोहासव रस एवं रक्त धातु को बलवान

बनाकर, उनके उपधातुओं की भी क्षीणता नष्ट करता है। ऐसी स्थिती में लोहासव एवं 'पुष्पधन्वा रस', अभ्रलोह का एकत्रित प्रयोग उपयुक्त होता है।

ज्वर, आमवात की जीर्णावस्था अथवा कामला पश्चात् उत्पन्न होने वाले रक्तधातुक्षय की अवस्था दूर कर बलस्थापन करने का कार्य लोहासव से उत्तम प्रकार से होता है। जीर्णावस्था में अग्निमांद्य दूर करने के साथ पचनसंस्था के अवयवों को बल प्रदान करने का कार्य लोहासव करता है। रक्तकणों की वृद्धि के कारण पादशोथ, आयासेन श्वासकष्टता इन लक्षणों में भी उपशय मिलता है।

बोलबद्ध रस

एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र. - ०८०००५४

'रक्तबोल' इस प्रमुख घटक द्रव्य से बना उत्तम रक्तस्तंभक कल्प है बोलबद्ध रस। यह कल्प शुद्ध पारद एवं शुद्ध गंधक युक्त खल्वी रसायन है।
रक्तबोल, यह एक प्रकार का वनस्पती निर्यास है, जो कफपित्तशामक एवं उत्तम रक्तस्तंभन कार्य करता है। बोलबद्ध रस को शाल्मली त्वक् की भावना दी गई है, जो उत्तम स्तंभन कार्य कर रक्तबोल के कार्य में मदद करता है।

प्रदरं च प्रमेहं च मूत्रकृच्छ्राश्मरी जयेत्।

रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर, प्रमेह तथा अश्मरीजन्य मूत्रकृच्छ्र एवं सरक्तमूत्र की अवस्था में बोलबद्ध रस लाभकर होता है।

रक्तप्रदर व्याधी में यह कल्प श्रेष्ठ कल्पों में से एक माना जाता है। विशेषतः सूतिकावस्था में उत्पन्न होनेवाला अत्यधिक रक्तस्राव कम करने हेतु बोलबद्ध रस का प्रयोग किया जाता है। गर्भाशय स्थित रक्तवाहिनीयों का संकोच होकर यह कार्य होता है। साथही गर्भाशय में उत्पन्न शूल भी इसके प्रयोग से कम होता है।

गर्भाशय शैथिल्य एवं गर्भाशय में उत्पन्न अर्बुद के कारण अत्यधिक मासिकस्राव में भी बोलबद्ध रस अत्यंत उपयुक्त कल्प है। बोलबद्ध रस के प्रयोग से गर्भाशय शैथिल्य दूर होकर तथा रक्तवाहिनीयों का संकोच होकर रक्तस्राव शीघ्र कम हो जाता है। ऐसी स्थिती में बोलबद्ध रस का प्रयोग अशोकारिष्ट के साथ करने से लाभ प्राप्त होता है। गर्भाशयगत अर्बुद की वृद्धि कम करने में भी यह मदद करता है।

रक्तप्रदर की तरह ही श्वेतप्रदर में भी बोलबद्ध रस उपयुक्त है। श्वेतस्राव गर्भाशय दौर्बल्य अथवा गर्भाशय ग्रीवा प्रदेश में व्रणोत्पत्ति के कारण उत्पन्न हुआ हो, तो बोलबद्ध रस का प्रयोग अत्यंत लाभकर होता है। इससे व्रणदुष्टी दूर होकर श्वेतस्राव कम होता है।

उत्कृष्ट रक्तस्तंभक होने से बोलबद्ध रस रक्तार्श, रक्तातिसार तथा सरक्त मूत्रप्रवृत्ति में लाभ देता है। रक्तार्श में बोलबद्ध रस एवं अर्श हिता टेबलेट्स का एकत्रित प्रयोग फलदायी है। रक्तातिसार यदि आंत्र में उत्पन्न व्रण की वजह से हो अथवा कृमियों की वजह से हो तो, बोलबद्ध रस एवं कुटज पर्पटी वटी उत्तम लाभ देते हैं। सरक्त मूत्रप्रवृत्ति यदि अश्मरी अथवा मूत्रनलिका क्षोभ से उत्पन्न हो तो, बोलबद्ध रस एवं शीतसुधा का एकत्रित प्रयोग प्रभावशाली होता है।

प्रमेह में विशेषतः कफज प्रमेह में बोलबद्ध रस के प्रयोग से वृक्क तथा बस्ति की अंतः त्वचा से निकलनेवाले अत्यधिक स्राव अथवा क्लेद का शोषण होता है।

चंद्रकला रस

एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र. - ०८०००६४

जिस तरह चांद की शीतल छाया से शरीर तथा मन को शांति मिलती है, उसी तरह पित्त की बढी हुई उष्णता तथा तीक्ष्णता इस कल्प के प्रयोग से कम होकर राहत मिलती है, इसीलिए इसे 'चंद्रकला रस' कहा जाता है।

सर्व पित्तगदध्वंसी वातपित्तगदापहः।
ग्रीष्मकाले शरत्काले विशेषेण प्रशस्यते।। रसरत्नसमुच्चय

चंद्रकला रस तिक्त मधुर रसात्मक द्रव्यों से संगठित उत्कृष्ट पित्तशामक कल्प है। विशेषतः ग्रीष्म ऋतु तथा शरद ऋतु में

पित्तप्रकृती व्यक्ति में यह कल्प स्वास्थ्य रक्षण के लिए अत्यंत असरदार है। तिक्त रस प्रधान तथा शीत वीर्य होने से चंद्रकला रस उत्तम रक्तप्रसादक कल्प साबित होता है। चंद्रकला रस को दाडिम, दूर्वा स्वरस, केवडा, सहदेवी, कुमारी, पर्पट, मुस्ता, रामशीतलिका, द्राक्षा एवं शतावरी की भावना दी गई है, जो पित्तशामक एवं मृदू रेचन का कार्य करते हैं।

ऊर्ध्वाधो रक्तपित्तं च रक्तवांतिं विशेषतः।

उर्ध्वग तथा अधोग रक्तपित्त की चिकित्सा में चंद्रकला रस अत्यंत उपयुक्त कल्प है। विशेषतः पित्त के उष्ण - तीक्ष्ण तथा द्रव गुणों की वृद्धी से उत्पन्न रक्तपित्त में जहाँ कटु, अम्ल, लवण रस प्रधान तथा विदाही खाद्यपदार्थों का सेवन, यह हेतु हो तथा विकृत पित्त से यकृत् दुष्ट होकर रक्त की दुष्टी हो, ऐसी अवस्था में यकृतस्थ पित्तशमन एवं रक्तप्रसादन हेतु चंद्रकला रस का प्रयोग असरदार साबित होता है। चंद्रकला रस में उपस्थित ताम्र भस्म एवं कुटकी की वजह से यह कल्प शीत वीर्यात्मक होने पर भी अग्निमांद्य नहीं करता तथा यकृतस्थ पित्त की दुष्टी दूर करता है। मुस्ता एवं पर्पट, यह उत्तम आमपाचक होने से रक्तपित्त में उत्पन्न सामावस्था अथवा स्रोतोरोध को दूर करते हैं।

इसी तरह रक्तज छर्दि में भी पित्तशमनार्थ तथा रक्तस्तंभनार्थ चंद्रकला रस प्रभावशाली कल्प है। यदि रक्तज छर्दि का हेतु आमाशय व्रण हो, तो व्रणरोपणार्थ भी चंद्रकला रस अत्यंत लाभदायक सिद्ध होता है। रक्तज छर्दि तथा आमाशय व्रण में चंद्रकला रस का प्रयोग शीतसुधा अथवा दूध के साथ खाली पेट करने से अधिक लाभ प्राप्त होता है।

पित्त के उष्ण तीक्ष्ण एवं द्रव गुण वृद्धी से उत्पन्न रक्तप्रदर, गुदगत रक्तस्राव, नासागत रक्तस्राव, सरक्त मूत्रप्रवृत्ती में चंद्रकला रस लाभदायक कल्प है। शरद ऋतु में विशेषतः पित्त प्रकोप की वजह से रक्त दुष्टी होकर उपरोक्त विकार नजर आते हैं। साथही शरद ऋतु में पित्त प्रकोप से उत्पन्न लक्षण जैसे सर्वांगदाह, मूत्रदाह, मूत्रकृच्छ्र, भ्रम, शिरःशूल तथा विसर्प, कक्षा, शीतपित्त जैसे त्वचा विकार नजर आते हैं। इन विकारों में चंद्रकला रस जैसा रक्तप्रसादक एवं पित्तशामक शीत वीर्यात्मक कल्प लाभ देता है।

ज्वर एवं कामला व्याधी में विशेषतः शरीर में दाह यह लक्षण रहते, चंद्रकला रस अत्यंत कारगर कल्प साबित होता है। इसके सेवन से पित्त का शमन होकर रक्त दुष्टी दूर होती है। इसी तरह अम्लपित्त की निरामावस्था में पित्त का उष्ण, तीक्ष्ण गुण बढने से उत्पन्न उदरदाह, उदरशूल में चंद्रकला रस उपयुक्त है।

पित्तवृद्धिजन्य लक्षणों से सन्निपातिक ज्वर व्याधि में तीव्र ज्वरोष्मा वृद्धि, शिरःशूल, नाक से खून आना, भ्रम आदि लक्षणों में चंद्रकला रस शामक कार्य से लाभदायक होता है।

ग्रीष्म ऋतु में धूप में काम करने से, अधिक व्यायाम अथवा श्रम करने से, मद्यपानादि द्रव्यों का सेवन, उष्ण तीक्ष्ण द्रव्यों का अत्यधिक सेवन आदि से शरीर में पित्तप्रकोप होकर शरीरदाह, शिरःशूल, भ्रम, तृष्णाधिक्य, चिडचिडापन आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। इन अवस्थाओं में चंद्रकला रस अपने पित्तशामक कार्य से उत्तम लाभ देता है।

पित्तजन्य कास अथवा पित्तप्रधान राजयक्ष्मा जैसे व्याधि में अवयवों में उत्पन्न सरंभ की अवस्था, पाक, दाह कम करने का महत्वपूर्ण कार्य चंद्रकला रस से होता है। कफ के साथ रक्त निष्ठीवन होने की अवस्था में भी चंद्रकला रस उत्तम लाभ देता है।

शरद ऋतु यह पित्त प्रकोप का ऋतु होता है। इस ऋतु में प्रकोपक आहार विहारादि के सेवन से पित्त का उष्ण तीक्ष्ण गुण बढ जाता है। जिससे दाह क्षोभादि लक्षण नजर आते हैं। चंद्रकला रस में

उपस्थित पित्तशामक एवं पित्तविरेचक द्रव्यों के कारण पित्त का उष्ण तीक्ष्ण गुण कम होने में मदद होती है। प्रकुपित पित्त का परिणाम मूत्रवह संस्थान पर होकर सदाह, सरक्त मूत्र प्रवृत्ती यह लक्षण उत्पन्न होते हैं। इन अवस्थाओं में चंद्रकला रस के प्रयोग से मूत्रदाह दूर होता है साथ ही मूत्र से रक्त की उपस्थिती बंद हो जाती है।

गंधक रसायन

एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र. - ०५०००२४

शुद्ध गंधक को पित्तशामक द्रव्यों की भावना देकर बनाए गए इस उत्तम रसायन कल्प को गंधक रसायन कहा जाता है। यह कल्प पारद अथवा कज्जली विरहित कल्प है।

गन्धः शुद्धो गर विषहरः क्षुद्रकुष्ठेभसिंहः।
सुगन्धिकः सुनिर्मलः सरो रसायनोत्तमः।। रसतरंगिणी

शुद्ध गंधक गर विषनाशक, कुष्ठहर विशेषतः क्षुद्रकुष्ठ नाशक, सर गुणात्मक, आमपाचक एवं उत्तम रसायन है। शुद्ध गंधक, अशुद्ध पारद एवं अशुद्ध नाग से उत्पन्न विकारों को शीघ्र नष्ट कर देता है।

हरति सकल रोगान् गंधकाख्यः प्रयोगः।
मृतसदृशनराणां प्राणदो दीर्घमायुः।। योगरत्नाकर

योगरत्नाकर ग्रंथ में गंधक रसायन, इस कल्प की प्रशंसा ऐसे की गई है कि, इस कल्प के सेवन से सर्व विकार नष्ट होते हैं तथा मृत्यु के नजदीक गए हुए व्यक्ति को भी दीर्घायुष्य प्राप्त होता है।

शुद्ध गंधक को गोदुग्ध, चातुर्जात, गुडूची, त्रिफला, भृंगराज, आर्द्रक एवं शुण्ठी की भावना देने से गंधक रसायन की निर्मिती होती है। गंधक रसायन में उपस्थित गोदुग्ध, गंधक के विषदोष को दूर कर उसे सात्म्य बनाता है, चातुर्जात दीपन एवं पाचन गुणधर्मयुक्त है, गुडूची अग्निदीपन, बल्य एवं रसायन है, त्रिफला क्लेदनाशक एवं रसायन है, भृंगराज आमपाचक एवं विषघ्न है तथा आर्द्रक एवं शुण्ठी दीपन एवं पाचन है।

यह कल्प उत्कृष्ट पित्तशामक होने से रस एवं रक्त धातु में बढे हुए पित्त को तुरंत ही कम कर देता है। गंधक मूत्र, पुरीष एवं स्वेद के माध्यम से शरीर से बाहर निकलता है। इसी वजह से यह कल्प मल, मूत्र एवं स्वेद संबंधित पित्तज विकारों में अत्यंत उपयुक्त है।

रस - रक्त धातु गामित्व तथा स्वेद के माध्यम से शरीर के बाहर निकलने के स्वभाव से गंधक रसायन सर्व प्रकार के कुष्ठ विकारों

में उपयुक्त है। विशेषतः पित्तजन्य दौर्गन्ध्य, स्राव, कण्डू, त्वक् दाह, पाक अथवा पूयस्राव होने पर गंधक रसायन जैसा प्रभावशाली कल्प नहीं मिलता। पामा, विचर्चिका एवं मंडल कुष्ठ में गंधक रसायन के प्रयोग से क्लेदशोषण होकर स्राव नष्ट होता है, कण्डू तथा दाह का शमन होता है। गंधक रसायन के सेवन से त्वचा में स्थित दोष दूर होते हैं तथा त्वचा उत्तम रस एवं रक्त धातु से पुष्ट होती है।

अरुंषिका व्याधी में केशभूमी पर स्राव तथा दाह युक्त पिटिकाओं की उत्पत्ति होती हैं। ऐसे स्थिती में दाह शमनार्थ एवं स्राव शोषणार्थ गंधक रसायन का प्रयोग अमृतादि गुग्गुल तथा कृमिकुठार रस के साथ करने से लाभ मिलता है।

स्रावी त्वचा विकारों की तरह ही शुष्क त्वचा विकारों में भी गंधक रसायन लाभ देता है। दारुणक जैसे शुष्क केशभूमी विकार में गंधक रसायन के प्रयोग से कण्डू एवं दाह का नाश होता है। दारुणक की चिकित्सा में गंधक रसायन का प्रयोग पंचतिक्त घृत गुग्गुल के साथ करने से लाभ प्राप्त होता है।

पूय स्रावयुक्त त्वचा विकार जैसे पूयदन्त, मुखदूषिका, पूयमेह, कर्णपूय आदि में गंधक रसायन वैद्यों का पहला पसंदीदा कल्प है। इसके प्रयोग से स्थानिक पाक की प्रक्रिया कम होती है तथा पूयस्राव नष्ट होता है।

नाडीव्रण की अवस्था में रस, रक्त तथा मांस धातु दुष्ट होते हैं। ऐसे स्थिती में गंधक रसायन का प्रयोग त्रिफला गुग्गुल के साथ करने से लाभ मिलता है। नाडीव्रण में विशेषतः पूयस्राव, कण्डू एवं दाह लक्षण रहते, गंधक रसायन अत्यंत असरदार कल्प है।

वातरक्त व्याधी में पिटिका उत्पत्ति, अत्यधिक दाह एवं तोदवत शूल रहते, गंधक रसायन का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। गंधक रसायन के प्रयोग से रक्त में बढे हुए पित्त की उष्णता एवं तीक्ष्णता तुरंत कम हो जाती है, जिस वजह से वातरक्त के उपरोक्त लक्षण कम हो जाते हैं।

गंधक रसायन का प्रयोग दूध, शक्कर, गुलकंद के साथ करने से अधिक लाभ प्राप्त होता है। इस कल्प के सेवन के दौरान अम्ल, लवण रसात्मक खाद्यपदार्थ, शाक सब्जियाँ, सर्व प्रकार की दालें, स्त्रीप्रसंग और सवारी का परित्याग करना चाहिए, ऐसा निर्देश ग्रंथों में मिलता है।

स्वेद के मार्ग से गंधक शरीर से बाहर निकलता है, इस वजह से त्वचा विकारों में अधिकांशतः रुग्ण यह संकेत देते हैं, कि फुंसियाँ आकार में बढ रही हैं अथवा लक्षण बढ रहे हैं। ऐसे स्थिती में कुशल वैद्य का कर्तव्य है, कि रुग्ण को गंधक रसायन का प्रयोग करते समयही यह बताए, कि यह त्वचा विकारों में गंधक रसायन के प्रयोग से मिलनेवाला उत्तम चिन्ह है। इससे त्वचा विकार शीघ्र कम होकर, रुग्ण का मनोबल बढता है।

गर्भपाल रस

एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र. - ०८०००७४

गर्भधारणा से लेकर प्रसूति तक, ऐसा एक कल्प जो, गर्भ का पालन अर्थात् योग्य पोषण एवं धारण करता है, वह है 'गर्भपाल रस'।

मासप्रथमारभ्य नवमासान्तमेव च।
गर्भिणीरोगनाशनार्थ गर्भपालरसः स्मृतः । रसचंडांशु

गर्भस्थापना के प्रथम मास से नवममास अर्थात् प्रसूति पर्यंत की अवस्था में गर्भ एवं माता का उचित पोषण कर स्वास्थ्य बनाए रखने में उपयुक्त होने वाला यह एक प्रधान कल्प है। जिन स्त्रियों में बार बार गर्भपात या गर्भस्राव होने की शिकायत होती है, उनमें गर्भपाल रस का प्रयोग प्रत्यक्ष गर्भधारणा से पहले ही शुरु करने से गर्भधारण एवं पोषण की क्रिया में उत्तम लाभदायक साबित होता है। कई स्त्रियों में गर्भस्राव या गर्भपात होने के लक्षण दिखाई देते हैं साथही गर्भपोषण में कमी पायी जाती है। ऐसे लक्षण युक्त स्त्रियों में भी गर्भपाल से उत्तम लाभ मिलता है।

गर्भपाल रस में उपस्थित नाग भस्म एवं वंग भस्म उत्तम गर्भाशय बल्य तथा शुक्रधातुवर्धक है, लोह भस्म उत्कृष्ट रक्तवर्धक है, शुद्ध हिंगुल योगवाही एवं रसायन है, त्रिजात उत्तम पित्तशामक है तथा गर्भिणी अवस्था, विशेषतः प्रथम तीन मास में उत्पन्न छर्दि, हृल्लास, भ्रम, शिरःशूल आदि में अत्यंत उपयुक्त है, धान्यक एवं कृष्णजीरक पित्तशामक, बल्य एवं जठराग्नि प्राकृत रखने में उपयुक्त है, देवदार उत्कृष्ट वातशामक द्रव्य है तथा उत्तम गर्भस्थापक एवं गर्भाशय बल्य है। गर्भपाल रस को विष्णुक्रान्ता की भावना दी गई है, जो उत्तम गर्भस्थापक एवं गर्भपोषक है।

गर्भपाल रस केवल गर्भिणी अवस्था में ही नहीं, बल्कि स्त्री वंध्यत्व में भी उपयुक्त होने वाला उत्तम खल्वी रसायन है। स्त्रियों में बीजकोष, बीजवाहिनी अथवा गर्भाशय का योग्य पद्धती से विकास ना होने की वजह से अथवा उपरोक्त अवयवों की कार्यहानी की वजह से यदि गर्भधारणा नहीं होती, तो ऐसी स्थिती में 'गर्भपाल रस' अत्यंत फलदायी कल्प साबित होता है।

गर्भधारणा संबंधित सभी जाँच प्रक्रियाएँ सहीं होने के बावजूद, देर से गर्भधारणा होना अथवा गर्भधारणा सुलभता से ना होना, यह आजकल

आम बातें हो गई हैं। ऐसी अवस्था में **'....बीजग्रहणं च योन्यां'**, इस सूत्रानुसार गर्भपाल रस की योजना गर्भधारण अथवा बीजधारण के पूर्व ही करनी चाहिए।

गर्भपाल रस में उपस्थित नाग भस्म, वंग भस्म, त्रिकटु एवं जीरक, विकृत कफ एवं अपाचित मेद धातु को नियंत्रित कर गर्भाशय का शैथिल्य दूर करते हैं। जीरक यह गर्भाशय शोधक द्रव्यों में एक उत्कृष्ट द्रव्य है, जो गर्भाशय शोथजन्य अवस्था तथा श्वेतप्रदर में असरदार साबित होता है। वंग भस्म शुक्र जनन कार्य में उपयुक्त तथा गर्भाशय पोषक होने से स्त्री बीज उत्पत्ति में अहं भूमिका निभाता है, साथही गर्भाशय शैथिल्य से उत्पन्न श्वेतप्रदर एवं अत्यार्तव में उपयुक्त होता है। नाग भस्म गर्भाशय से उत्पन्न अत्यधिक स्राव को कम कर गर्भाशय व्रण, संक्रमण तथा शोथजन्य अवस्थाओं में अत्यंत असरदार होता है। लोह भस्म स्त्रीजननेंद्रियों को बल प्रदान कर मासिक धर्म को नियंत्रित करने में और साथही श्वेतप्रदर एवं गर्भाशय ग्रीवा पाक (Cervical erosion) जैसी शोथजन्य अवस्थाओं की चिकित्सा में गर्भपाल रस कारगर साबित होता है।

इस तरह 'गर्भपाल रस', यह गर्भस्थापक होने के साथ साथ गर्भिणी अवस्था में गर्भ पोषण करता है तथा सगर्भावस्था में हो सकने वाले उत्पन्न गर्भस्राव, गर्भपात आदि विकारों को रोकता है। वंध्यत्व में स्त्रीजननेंद्रियों को बल प्रदान कर, गर्भपाल रस उनके कार्य में सुधार लाकर गर्भधारणा में मदद करता है।

अतः 'गर्भपाल रस' अपने नाम को सार्थक कर गर्भावस्था में गर्भ का यथायोग्य पोषण कर प्रसूति योग्य पद्धति से करने में कारगर है।

सूतिकाभरण रस

एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र. - ०९००१३४

प्रसूति के दौरान अथवा सूतिका अवस्था अर्थात् बालक निष्क्रमण के बाद, गर्भाशय का उचित शोधन ना होने पर दोष गर्भाशय में लीन हो जाते हैं। यह दोष आगे जाकर सूतिका ज्वर, सूतिका मक्कल, धनुर्वात आदि विकारों को उत्पन्न करते हैं, जिनमें अत्यंत प्रभावी सुवर्णकल्प है 'सूतिकाभरण रस '।

सूतिकारोगमतुलं धनुर्वातं विशेषतः ।
त्रिदोषोत्थान्हरेद्व्याधीन् इच्छापत्यं प्रदापयेत् ।।
सूतिकाभरणं नाम सर्वरोगहरञ्च तत् ।। भै. र.

प्रसूति के समय यदि अस्वच्छतापूर्वक वातावरण हो, भलेहि वह वैद्य, दाई अथवा प्रसूति संबंधित इस्तमाल किए हुए यंत्र - शस्त्र की वजह से हो, तो गर्भाशय एवं योनिमुख में जल्द ही जंतुसंसर्ग हो जाता है। सूतिकावस्था में गर्भाशय शुद्धि ठीक तरह से ना होने पर, इस जंतुसंसर्ग से सूतिकाविष की उत्पत्ति होती है। इसी सूतिकाविष से सूतिका ज्वर, सूतिका मक्कल, धनुर्वात आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। इसी तरह प्रसूति के दौरान यदि गर्भाशय व्रण की उत्पत्ति हुई हो एवं गर्भाशय की शुद्धि यथायोग्य न की गई हो, तो उस व्रण का रुपांतर दुष्ट व्रण में हो जाता है और सूतिका ज्वर, श्वेत स्राव, पूय स्राव आदि लक्षण नजर आते हैं।

कई बार प्रसूति पश्चात् अपरापतन ठीक से न होने पर अथवा रक्तस्राव उचित रुप से न हो अथवा अत्यधिक होने की आशंका से तुरंत कम करनेवाली अंग्रेजी दवाईयों के प्रयोग से गर्भाशय शुद्धि योग्य रुप से नहीं होती। यह दोष गर्भाशयस्थित होकर सूतिका ज्वर, मक्कल जैसे विविध विकार उत्पन्न करते हैं। इस अवस्था में सूतिकाभरण रस गर्भाशयगत दोषदुष्टि दूर करने के लिए अत्यंत असरदार साबित होता है।

इस कल्प में उपस्थित सुवर्ण भस्म जंतुघ्न, विषघ्न, रसायन, वृष्य एवं ओजोवर्धक है, रजत भस्म आक्षेपघ्न एवं मज्जावह स्रोतस् पर विशेष शामक है, ताम्र भस्म यकृत् पर कारगर भस्म, विषघ्न एवं पित्तस्रावक है, कज्जली जंतुघ्न, रसायन एवं योगवाही है, प्रवाल भस्म रक्तदुष्टीहर एवं दाहशामक है, अभ्रक भस्म धातुक्षयनाशक एवं बल्य है, शुद्ध हरताल एवं शुद्ध मनःशिल उष्ण, तीक्ष्ण, लेखन एवं दुष्ट कफ - क्लेद नाशक है, त्रिकटु दीपन, पाचन एवं वातानुलोमन है, कुटकी उत्कृष्ट भेदन एवं पित्तस्रावी है। सूतिकाभरण रस को अर्क क्षीर, चित्रकमूल क्वाथ एवं

पुनर्नवा स्वरस की भावना दी गई है। अर्क क्षीर एवं चित्रकमूल क्वाथ उष्ण, तीक्ष्ण, दीपन एवं दुष्ट कफ - आम - क्लेद पाचक है तथा पुनर्नवा स्वरस उत्तम शोथघ्न है।

इन गुणधर्मों से युक्त सूतिकाभरण रस, गर्भाशय स्थित दोष दुष्टी, सूतिकाविष एवं जंतुसंसर्ग को नष्ट करता है। सूतिका ज्वर में इसके प्रयोग से दोष दुष्टी दूर होकर ज्वर वेग भी कम हो जाता है। सूतिकावस्था में उत्पन्न होनेवाले धनुर्वात में सूतिकाभरण रस में उपस्थित रजत भस्म से आक्षेप नष्ट हो जाते हैं। रजत भस्म का वातवाहिनीयों एवं स्नायुओं पर शामक कार्य यहाँ कारगर साबित होता है।

सूतिकाभरण रस के प्रयोग के साथ साथ उत्तरबस्ति अथवा योनि धावन जैसे कर्म लाभ देते हैं, जिसमें त्रिफला क्वाथ अथवा पंचवल्कल क्वाथ का प्रयोग अधिक असरदार होता है। इससे दुष्ट गर्भाशय व्रण जल्द ही ठीक हो जाता है एवं जंतुसंसर्ग की आशंका नहीं रहती।

सूतिकाभरण रस केवल सूतिकावस्था में ही देना जरुरी नहीं है। किसी भी कारण से उत्पन्न गर्भाशय क्षोभ में यह कल्प लाभकर है। अनपत्यता का कारण यदि गर्भाशय में उत्पन्न दोष दुष्टी है अथवा गर्भाशय का बल कम होना है, तो सूतिकाभरण रस गर्भाशय में उत्पन्न दोष दुष्टी नष्ट कर विशेष प्रभावी कल्प है। गर्भाशय शुद्धि पश्चात् ही गर्भाशय की फलित बीज धारण क्षमता बढानेवाले कल्प जैसे 'पुष्पधन्वा रस' का प्रयोग करना अधिक संयुक्तिक तथा लाभदायक होगा।

इसी तरह कुशल वैद्य 'सूतिकाभरण रस' का प्रयोग गर्भाशय दुष्टी से उत्पन्न अनेक विकारों में कर सकते हैं।

सुवर्णमाक्षिक भस्म

एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र. - ०२००१८

ईषत्सुवर्णसाहित्यात् सुवर्णगुणसाम्यतः।
सुवर्णद्युतिमत्त्वाद्वा स्वर्णमाक्षिकमुच्यते।। रसतरंगिणी

माक्षिक जिसे रसशास्त्र में महारस के अंतर्गत वर्णित किया है, ताम्र, लोह एवं गंधक से बना हुआ खनिज द्रव्य है। इसके दो प्रकार होते हैं, सुवर्णमाक्षिक एवं रौप्यमाक्षिक। सुवर्ण समान चमक होने से तथा अल्प प्रमाण में सुवर्ण का अंश एवं गुणधर्म होने से इसका

सुवर्णमाक्षिक यह नामकरण किया गया है। सुवर्णमाक्षिक को भस्मविधिद्वारा पुटन संस्कार कर सुवर्णमाक्षिक भस्म तैयार किया जाता है। यह भस्म उत्कृष्ट रक्तप्रसादक, पित्तशामक, स्तंभक, बल्य, योगवाही एवं रसायन है।

सुवर्णमाक्षिकं वृष्यं मधुरं तु रसायनम् ।
तिक्तं स्वर्यञ्च चक्षुष्यं त्रिदोषघ्नं परं मतम् ।।
अनिद्रां नाशयत्याशु योगवाहि परं मतम् ।। रसतरंगिणी

रक्तपित्त व्याधि में विदग्ध हुए पित्त की वजह से रक्त धातु में उष्ण, तीक्ष्णादि गुण बढ जाते हैं। अन्य धातु सें द्रवांश की प्राप्ती से द्रवगुण बढ जाता है। बढे हुए द्रव गुण तथा उष्ण तीक्ष्ण गुण के कारण रक्तवाहिनी फटने से रक्तस्राव होता है। इस रक्तगत दूषित पित्त का उष्णत्व तीक्ष्णत्व कम कर रक्तस्तंभन करने का कार्य सुवर्णमाक्षिक भस्म करता है।

रक्तपित्त व्याधी में रक्ताश्रित पित्त का द्रव गुण बढने से रक्तस्राव की उत्पत्ति होती है। ऐसे स्थिती में सुवर्णमाक्षिक भस्म के प्रयोग से पित्त के बढे हुए द्रव गुण का शोषण होकर तथा रक्तवाहीनियों का संकोच होकर रक्तस्राव तुरंत कम हो जाता है।

पित्त प्रकोप से उत्पन्न उर्ध्वजत्रुगत विकार जैसे शिरःशूल, अनिद्रा एवं नेत्रदाह में सुवर्णमाक्षिक भस्म अत्यंत असरदार योग है। सुवर्णमाक्षिक भस्म तिक्त मधुर रसात्मक एवं शीत वीर्यात्मक होने से ऐसी स्थितीयों में लाभ देता है। शरीर पित्त प्रकोपावस्था में रहते आँखों में जलन, आँखें लाल

होना, सरदर्द हाथ और पैर के तलुओं में जलन होना, शरीर में उष्मा प्रतिती होती हैं। इस अवस्था में सुवर्णमाक्षिक भस्म के पित्तशामक गुण से इन पित्तप्रकोपजन्य लक्षणों में राहत मिलती हैं। पित्तदुष्टि से उत्पन्न विसर्प, कक्षा अथवा विस्फोट की अवस्था में दाह, राग, पाक आदि लक्षण रहते सुवर्णमाक्षिक का प्रयोग अन्य पित्तशामक द्रव्य जैसे गुडूची सत्व, प्रवाल पिष्टी, मुक्ता पिष्टी के साथ करने से त्वरित लाभ मिलता है। इन अवस्थाओं में शीतसुधा, चंदनासव आदि अनुपानरुप में प्रयोग कर सकते हैं।

अम्लपित्त की जीर्णावस्था में पचनसंस्था के आमाशय, ग्रहणी आदि अवयवों में ह्रल्लास, शोथ की स्थिती उत्पन्न होती है। कभी कभी आध्मान भी रहता है। इस अवस्था में मुक्ता पिष्टी, प्रवाल पिष्टी के साथ सुवर्णमाक्षिक का प्रयोग उत्तम लाभकर साबित होता है।

कफपित्तहर एवं अग्निमांद्य दूर करनेवाला योग होने से सुवर्णमाक्षिक भस्म कामला की दोनों अवस्थाएँ अर्थात् बहुपित्त कामला एवं रुद्धपथ कामला तथा जीर्ण ज्वर जैसे व्याधियों में अत्यंत उपयुक्त योग है।

सुवर्णमाक्षिक भस्म में लोह का अंश होने से रक्तकणों की निर्मिती शीघ्र होने में मदद होती है। पित्तशामक गुणधर्म होने के साथ रक्तधातु बढाने का कार्य करने से सुवर्णमाक्षिक भस्म पित्त रक्तदुष्टी से उत्पन्न रक्तप्रदर, रक्तार्श के कारण उत्पन्न रक्ताल्पता तथा दूषित पित्त के कारण हुआ रक्तधातु का क्षपण, कामलादि व्याधि से उत्पन्न रक्तधातु क्षय आदि अवस्थाओं में लाभकर होता है। इसी वजह से पाण्डु व्याधी में 'सुवर्णमाक्षिक भस्म' अथवा 'ताप्यादि लोह' जैसे सुवर्णमाक्षिक के कल्प का प्रयोग अत्यंत असरदार साबित होता है। रक्तकणों की शीघ्र वृद्धी होने से तथा अग्निमांद्य दूर होने से, पाण्डुग्रस्त रुग्ण में सुवर्णमाक्षिक के सेवन से बल वृद्धी जल्द होती है।

ताम्र तथा लोह के अंश होने से सुवर्णमाक्षिक भस्म का कार्य यकृत् एवं प्लीहा पर भी होता है। इसी वजह से उदर व्याधी में सुवर्णमाक्षिक भस्म का प्रयोग अग्निवृद्धी एवं शोथहर कार्य के लिए किया जाता है। इसके प्रयोग से यकृतस्थ पाचक पित्त की सामता नष्ट होती है तथा पित्त का अत्यधिक द्रव गुण कम होता है।

शरद ऋतु में पित्त प्रकोपजन्य सर्वांगदाह तथा पित्तज त्वचा विकारों में सुवर्णमाक्षिक भस्म लाभदायक है। यहाँ सुवर्णमाक्षिक भस्म का शीत वीर्य तथा पित्तशामक एवं रक्तप्रसादक गुणधर्म उपयुक्त होता है। पित्तज त्वचा विकार एवं सर्वांगदाह में सुवर्णमाक्षिक भस्म का प्रयोग सारिवा चूर्ण के साथ करने से लाभ प्राप्त होता है।

ताप्यादि लोह

एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र. - ०५००११४

'ताप्य' अर्थात् 'सुवर्णमाक्षिक' से निर्मित होने से इस कल्प का नाम 'ताप्यादि लोह' रखा गया है।

योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ।
रसायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोगहरं शिवम् ।। च. चि. १६ (पाण्डु)

चरक चिकित्सास्थान - पाण्डु चिकित्सा अध्याय में ताप्यादि लोह का उल्लेख 'योगराज' इस नाम से मिलता है। यह योगराज अमृत के समान श्रेष्ठ रसायन एवं सर्वरोग नष्ट करनेवाला कल्प है।

पाण्डुरोगं विषं कासं यक्ष्माणं विषमज्वरम्।
कुष्ठान्यजीर्णकं मेहं शोषं श्वासमरोचकम्।।
विशेषाद्धन्त्यपस्मारं कामलां गुदजानि च।। च. चि. १६ (पाण्डु)

ताप्यादि लोह रसवह स्रोतस्, रक्तवह स्रोतस् एवं मज्जावह स्रोतस् पर विशेष प्रभावी कल्प है। यह कल्प उत्कृष्ट अग्निदीपक, सप्तधातुवर्धक, ओजोवर्धक, रसायन एवं रक्तवर्धक है। इसके प्रभाव से हृदय, यकृत्, प्लीहा, मस्तिष्क एवं वृक्क के कार्य सुचारु रुप से होते हैं। पाण्डु, विषमज्वर, कामला, यक्ष्मा, श्वास, अपस्मार, प्रमेह जैसी व्याधियों में इस कल्प के प्रयोग से उत्तम लाभ मिलता है।

ताप्यादि लोह में सुवर्णमाक्षिक भस्म एवं मण्डूर भस्म (लोहकिट्ट), यह उत्तम रक्तवर्धक तथा त्रिफला, त्रिकटु, चित्रक यह उत्तम अग्निवर्धक द्रव्य उपस्थित हैं, जिनकी वजह से पाण्डु रोग की चिकित्सा में यह कल्प विशेष प्रभावी है। सुवर्णमाक्षिक भस्म तथा मण्डूर भस्म, यह लोह भस्म की तुलना में अधिक सुपाच्य होने से, इनका शरीर में शोषण तथा उत्तम रक्त धातु में रुपांतर सुलभता से होता है। सुवर्णमाक्षिक भस्म उत्तम पित्तशामक एवं रक्तप्रसादक है तथा मण्डूर भस्म, यह रंजक पित्त को योग्य बनाकर रक्तकणों की वृद्धी में सहाय्यक है। विशेषतः पाण्डु रोग यदि पित्तप्रधान कारणों से उत्पन्न हुआ हो, तो 'ताप्यादि लोह' जैसा और कोई लाभदायक कल्प नहीं मिलता।

पाण्डु व्याधी का हेतु यदि कृमि हो, तो ताप्यादि लोह का प्रयोग लाभ देता है। ताप्यादि लोह में उपस्थित विडंग एवं चित्रक कृमिघ्न होने से यह कल्प कृमिजन्य पाण्डु में कृमियों का नाश तथा रक्तधातुवर्धन, यह दोनों कार्य करता है।

पित्तशामक, रक्तप्रसादक, अग्निदीपक होने से तथा यकृत् एवं प्लीहा पर प्रभावी होने से ताप्यादि लोह, कामला व्याधी में विशेषतः बहुपित्त कामला में अत्यंत असरदार कल्प है। ताप्यादि लोह के प्रयोग से रसधात्वग्नि वृद्धी होकर आहार रस का रुपांतर उत्तम रसधातु में होता है। कामला व्याधी में ज्वर, दाह, तृष्णा, मुखपाक आदि पित्तप्रधान लक्षण रहते, ताप्यादि लोह उपयुक्त कल्प है।

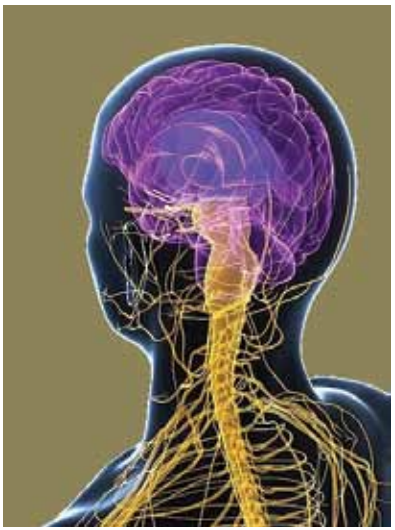

ज्वर अथवा विषम ज्वर के पश्चात् उत्पन्न धातुक्षय, पाण्डु के लक्षण रहते ताप्यादि लोह उपयुक्त है। इसके प्रयोग से धातुपोषण सुधरता है तथा रहरहकर आनेवाला ज्वर नष्ट होता है। ज्वर अथवा विषम ज्वर से उत्पन्न यकृत् प्लीहावृद्धी में भी ताप्यादि लोह लाभदायक है।

रजत भस्म की उपस्थिती की वजह से ताप्यादि लोह मज्जावह स्रोतस् के समस्त विकारों में उपयुक्त है। **'पित्तधरा इति मज्जाधरा'**, इस सूत्रानुसार पित्तवर्धक आहार विहार से उत्पन्न पित्तधरा कला की विकृती से मज्जाधरा कला में विकृती उत्पन्न हुई हो तो, ताप्यादि लोह अत्यंत प्रभावशाली है। विशेषतः अपस्मार व्याधी का हेतु यदि विरुद्ध अन्न सेवन एवं तत्पश्चात् उत्पन्न पित्तधरा कला की विकृती है, तो ताप्यादि लोह का प्रयोग लाभ देता है।

प्रमेह एवं कुष्ठ, यह दोनों व्याधी अन्नपचन योग्य तरह से ना होने की वजह से उत्पन्न होते हैं। यकृत् में उत्पन्न विकृति से अधिक मात्रा में क्लेद निर्मिती होती है। जब यह क्लेद, रस, रक्त वं मांस धातु में स्थित होता है, तब कुष्ठ व्याधी होता है तथा मेद धातु में स्थित होने पर, प्रमेह व्याधी होता है। ताप्यादि लोह यकृत् की पचनादि क्रियाएँ सुधारता है तथा उत्तम धातु निर्मिती में सहायता करता है।

ताप्यादि लोह, यह प्रमेहजन्य कोथ की अवस्था में अत्यंत कारगर कल्प है। कोथ की स्थिती में स्थानीय धातुओं का क्षय होता है, जिसका कारण है उस स्थान में शुद्ध रक्त का अभाव। रक्तप्रसादक, सप्तधातुवर्धक एवं ओजोवर्धक गुणधर्म की वजह से ताप्यादि लोह कोथयुक्त स्थान में शुद्ध रक्त का प्रवाह सुचारु रुप से कर, कोथ की अवस्था को नष्ट करता है।

पक्षाघात व्याधी में शिर, हृदय एवं बस्ती, इन तीन मर्मों में विकृती उत्पन्न होती हैं। ताप्यादि लोह यह उत्तम रसायन रक्तप्रसादक एवं वातवाहीनियों के लिए बल्य कल्प है। पक्षाघात में विशेषतः पित्तज हेतुओं से उत्पन्न रक्त दुष्टी में ताप्यादि लोह का प्रयोग लाभदायक होता है। इससे पक्षाघात में उत्पन्न क्रियाहानी नष्ट होती है तथा शिर, हृदय, बस्ती का कार्य पुनः प्रस्थापित होने में सहायता होती है।

सुवर्णमाक्षिक जैसे रक्तप्रसादक, पित्तशामक, दाहशामक घटक द्रव्य तथा त्रिफला, त्रिकटु, चित्रक जैसे अग्निदीपन, पाचक द्रव्यों के संयोग से ताप्यादि लोह, अर्श विकार में अत्यंत उपयुक्त साबित होता है। इससे अर्श में उत्पन्न शोथ, रक्त दुष्टी एवं दाह कम हो जाता है।

अल्पार्तव तथा नष्टार्तव में ताप्यादि लोह का रक्तवर्धक एवं रसायन गुणधर्म लाभ देता है। धातुपरिपोषण क्रम सुधरता है तथा उत्तम रसादि धातु एवं उनके उपधातु जैसे आर्तव आदि की उत्पत्ति योग्य पद्धती से होती है।

जीर्ण विकार, विशेषतः हृद्रोग, राजयक्ष्मा आदि में धातुक्षय की अवस्था रहते, ताप्यादि लोह का प्रयोग फलदायी सिद्ध होता है।

अधिक जानकारी के लिए कृपया संपर्क करें;
स्वास्थ्य सेवा विभाग

श्री धूतपापेश्वर लिमिटेड

१३५, नानुभाई देसाई रोड, खेतवाडी, मुंबई - ४०० ००४
फोन : ९१-२२-३००३ ६३००
फॅक्स : ९१-२२-२३८८ १३०८
ई-मेल : healthcare@sdlindia.com
वेब साईट : www.sdlindia.com

केवल पंजीकृत चिकित्सक, अस्पताल या प्रयोगशालाओं के लिए
© All Rights Reserved